रजि. नं. पी.बी./जे.एल–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–71, अंक : 16, 24/27 जुलाई 2014 तदनुसार 12 श्रावण सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

शरीर याग

–ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात।।

–ऋ 10/7/6

शब्दार्थ– हे देव= कमनीय! अथवा कामनाक्रान्त जीव! तू **स्वयम्**= अपने–आपे **दिवि**=मस्तिष्क में विद्यमान **देवान्**= देवों को, इन्द्रियों को, दिव्य भावों को **यजस्व** = मिल प्रेर, संगत कर। **अप्रचेता**= मूढ़, अचेत **पाकः**=परिपक्व, पवित्र **तेः**= तेरा **किं**= क्या **कृणवत्**= कर सकता है **यथा**= जैसे तू **ऋतुभिः**= ऋतुओं के अनुसार **देवान्**= देवों को **अयजः**= संगत करता है **एवा**= ऐसे ही, हे **सुजात**= सुकुल! कुलीन! उत्तम! **देव**= देव! **तन्वं**= शरीर को **यजस्व**= संगत कर!

व्याख्या– इस मंत्र में कई धारणीय तत्व हैं–

1. देव =इन्द्रियां द्युलोक= मस्तिष्क में रहती हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड का एक संक्षिप्त सार Epitome है। ब्रह्माण्ड में त्रिलोकी है– द्यौ, अंतरिक्ष तथा पृथिवी। द्यौ में सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्रकाशपिण्ड रहते हैं। अन्तरिक्ष में वायु आदि है। पृथिवी सबका आयतन है। शरीर में मस्तिष्क= शिरोभाग द्यौ है। आत्मा को बाहर के पदार्थों का ज्ञान पहुंचाने वाले आंख, नाक, कान, रसना, स्पर्श इन्द्रिय–सब देव यहीं रहते हैं। शरीर का मध्य भाग अन्तरिक्ष है। अधो भाग पृथिवी है।

2. इनसे तुझे स्वयं संगत होना होगा, किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं करनी होगी। मेरी आंख से मैं ही देखूंगा, दूसरा कोई भी मेरी आंख द्वारा नहीं देख सकता। मेरे कान से मैं ही सुन सकता हूं, महाश्रवणशक्तिसम्पन्न होता हुआ भी दूसरा नहीं सुन सकता। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों की दशा समझ लेनी चाहिये। जैसे इनसे मैं ही कार्य ले सकता हूं, ऐसे ही इनके द्वारा प्राप्त होने वाले सुख–दुख का भागी तथा भोगी भी मैं ही बनूंगा।

3. **अप्रचेताः** मूढ़ अज्ञानी किसी का कुछ संवार नहीं सकता। पवित्रता के साथ ज्ञान भी अत्यन्त आवश्यक है।

4. ऋतु–ऋतु में उस उस ऋतु के अनुसार यज्ञ करने चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में ऐसे यज्ञों को भेषज्य यज्ञ कहा गया है। इनसे अपना–पराया स्वास्थ्य बिगड़ने नहीं पाता।

5. जैसे देवयज्ञ करना आवश्यक है वैसे शरीर–याग (यजस्व तन्वम्) भी आवश्यक है।

वेद सभी मनुष्यों के लिये है किन्तु आज तो यजस्व तन्वम् उपदेश भारतीयों के लिये अत्यन्त उपादेय है। वेद शरीर की उपेक्षा का उपदेश नहीं करता। यज्ञ वैदिक धर्म का प्राण है। यहां शरीर याग करने का विधान है। अर्थात शरीर निन्दनीय नहीं है। यजुर्वेद में कहा है।

इयं ते यज्ञिया तनूः। –यजु.4/13

यह तेरा तन यज्ञ करने योग्य है, पूजनीय परमात्मा से मिलाने का साधन है। कौन मूढ़ ऐसे अमूल्य रत्न को संभाल कर न रक्खेगा।

भवसागर पार करने को यह शरीर नौका है। नौका को बिगाड़ दोगे, उसमें छिद्र करोगे तो आप ही डूबोगे, लक्ष्य पर न पहुंचोंगे, इसी संसार–सागर में गोते खाते रहोगे, अतः तरणि को सुरक्षित रखो, इसी से वेद कहता है– **यजस्व तन्वम्**। जैसा कि ऊपर यजुर्वेद के प्रमाण से बताया जा चुका है कि यह मानव तन पूजनीय परमात्मा से मिलने का साधन है। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि शरीर का वेद की दृष्टि में कितना महत्व है। परमात्मा से मिलने–मिलाने की बात छोड़ भी दी जाए तो भी मानव शरीर का महत्व न्यून नहीं होता। वाचा शक्ति और किस शरीर में है? सांसारिक जीवन की सुख सुविधा इसी देह पर अवलम्बित है। रूग्ण देह वाला मनुष्य अपने परिवार को भी भार प्रतीत होता है, अपनी क्रिया भली भान्ति नहीं कर सकता, इस हेतु अथर्ववेद में कहा गया है– **स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज** अपने देह में अनमीवा–रोगरहित विराजमान हो, अर्थात आहार–विहार ऐसा रक्खो, जिससे किसी प्रकार का रोग शरीर पर आक्रमण न करे। शरीर पर रोग अपथ्य, मिथ्याहार, विहार, अशुद्ध उपचार से आते हैं। यदि खान–पान, शयन–आसन आदि में अनियमितता एवं संयम रखा जाए तो रोग होने का कोई हेतु नहीं। इस पर भी यदि शरीर रूग्ण हो जाये तो समझ लीजिए पूर्वजन्म की असावधानता का परिणाम है। इसे समझने का फल यह होना चाहिये कि मनुष्य अधिक सावधान हो जाए। पूर्वजन्म की बात से अगले जन्म का विचार करे। पूर्वजन्म के विचार, आचार, व्यवहार, विहार के अनुसार उत्पन्न संस्कार भावी जन्म के हेतु बनेंगे।

यहां एक बात और विस्मरण नहीं करनी चाहिए कि विचारों का शरीर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः शरीर याग के लिये विचारों की पवित्रता नितान्त प्रयोजनीय है। शरीर हृष्ट पुष्ट है किन्तु विचार अपवित्र है तो शरीर याग नहीं हुआ। इसका संकेत– **किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः** में है। मनन कीजिए। आत्मा को सम्बोधन करते हुये देव तथा सुजात शब्द कहे गये हैं। ये दोनों विशेषण महत्व के है। देव दिव्य भावों वाले को कहते हैं, अर्थात हे जीव ! तेरी नैसर्गिक प्रकृति तो देवत्व है, अज्ञान से तू असुर भावों में फंस जाता है, अतः अपना स्वरूप पहचान। निःसंदेह नेत्र आदि महादेव तेरे साथी हैं, किन्तु अप्रचेता=जड़, अतः तेरा कुछ नहीं संवार सकते। तू उनसे ऊपर उठ और अपने ऊपर भरोसा करके देवयज्ञ कर, शरीर याग कर, यज्ञ हो और देवयज्ञ हो, तभी कल्याण होगा।

–स्वाध्याय संदोह से साभार

भारतीय नारी और हमारा समाज

-ले० मनमोहन कुमार आर्य 196 चक्खूवाला-2 देहरादून

यह संसार या ब्रह्माण्ड ईश्वर की अपौरूषेय कृति है। अपौरूषेय ऐसी कृति होती है कि जिसे मनुष्यादि कोई प्राणी अकेला या सब मिलकर भी बना न सकें। अत: अपौरूषेय कृति सदैव ईश्वर द्वारा ही रचित होती है। ईश्वर है या नहीं ? आज कल पश्चिमी शिक्षा में दीक्षित व इन्हीं आचार-विचारों में पले व बढ़े प्राय: सभी व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। बहुत से तो ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानतें और जो मानते भी हैं तो वह नाना प्रकार के देवी-देवताओं, गुरूओं, फकीरों या कब्रों की पूजा के रूप में मानते हैं। उनका प्राय: कहना होता है कि हमारे सभी काम उन-उन मूर्तियों, गुरूओं. सन्त-फकीरों व कब्रों से पूरे हो रहे हैं तो वह उनको क्यों न माने ? आज दिनांक 12 जुलाई 2014 को देहरादून में वर्तमान में बहुचर्चित एक सन्त की शोभायात्रा देखी जिसमें बड़ी संख्या में स्त्री व पुरूष भव्य वेश-भूषा में सम्मिलित थे। हमारी दृष्टि में इस प्रकार के कार्य करना उद्देश्यहीन होने से बहुत बड़ी अज्ञानता है। ऐसे लोगों को समझाना प्राय: असम्भव सा है। वह सुनने व समझने के लिए तैयार ही नहीं होते। तर्क व युक्ति, जिससे कि सत्य का निर्णय होता है, उन्हें स्वीकार्य नहीं है। वह तो अपने मन की भावना या आवाज़ को, जो शुद्ध व पवित्र ज्ञान से सर्वथा रहित है, को सुनते हैं जो अज्ञान से युक्त होने के कारण उन जड़ मूर्तियों की पूजा को स्वीकार करती है जिनसे हमें कोई लाभ तो नहीं होता परन्तु हानियां बहुत होती हैं। एक अन्ध-विश्वास को मानने पर उसके साथ अनेकों अन्धविश्वास और जुड़ते जाते हैं, यह भी एक बहुत बड़ी हानि मूर्ति पूजा करने वालों की होती है।

ईश्वर ने इस सृष्टि को जीवात्माओं के सुख के लिए बनाया है। सुख व दु:ख जीवात्माओं के कर्मों के अनुसार परमात्मा देता है। हमें मानव शरीर, कुछ को पशुओं व पक्षियों आदि के शरीर भी उनके कर्मानुसार ईश्वर ने दिये हैं। हम जानते हैं कि स्त्री व पुरूष से ही यह सृष्टि आबाद व संचालित है। यदि सभी पुरूष हों या सभी स्त्रियां हों, तो भी सृष्टि चल नहीं सकती। ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि कर मनुष्यों व प्राणीजगत को बनाया और उसके बाद से मैथुनी सृष्टि आरम्भ हो गई। मैथुनी सृष्टि का तो हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण है परन्तु अमैथुनी सृष्टि ही आरम्भ में एकमात्र विकल्प होता है। इस विषय में डारविन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने जो कल्पनाएं की हैं उसमें विज्ञान, तर्क व बुद्धि का आश्रय न लेकर अपने मत व मजहब की रक्षा का उद्देश्य ही दृष्टिगोचर होता है। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर ने संसार को चलाने के लिए स्त्री व पुरूष दोनों को बनाया है जिससे संसार भी चले और जीवात्मायें अपने जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों, जिन्हें प्रारब्ध कहते हैं, उनका फल भी भोग सकें। इस विवरण से ज्ञात होता है कि नारी या स्त्री संसार को चलाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संसार में सर्वत्र पुरूष व स्त्री की संख्या के अनुपात से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ने ही यह सृष्टि बनाई है व वही इसे चला रहा है अन्यथा सभी स्त्री या सभी पुरूष ही जन्म लिया करते।

अब प्रश्न सम्मुख आता है कि नारी व पुरूष का आचरण व विचार कैसे होने चाहिये ? इसके लिए हमें यह देखना है कि ईश्वर हमसे चाहता क्या है ? अनुसंधान व खोज करने पर ज्ञात होता है कि ईश्वर ने अपना एक विधान सृष्टि के आरम्भ में दिया था जिसमें जीवनयापन व इससे जुड़े सभी प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। ईश्वर चाहता है कि मनुष्य, स्त्री व पुरूष का आचरण शुद्ध व पवित्र होना चाहिये। उन्हें ब्रह्मचर्य का सेवन व पालन करना चाहिये जिससे उनके शरीर बलिष्ठ रहे। वेद एवं वेदानुकूल शास्त्रों का अध्ययन कर उनकी शिक्षाओं का पालन करते हुए ही सभी गृहस्थियों को सन्तानों को उत्पन्न करना चाहिये और शेष जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने चाहिये जिससे वह 31 नील 10 खरब व 40 अरब वर्षों की लम्बी अवधि तक दु:खों से सर्वथा दूर रह कर, जन्म-मरण से रहित, मोक्ष व मुक्ति की अवस्था में पूर्ण आनन्द को प्राप्त रहें। इस विषय के विस्तृत ज्ञान सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ का नवम् समुल्लास पढ़ना अत्यन्त उपयोगी है।

वेदों के आधार पर हमें प्रतीत होता है कि स्त्री का किशोर अवस्था में विद्याध्ययन करना, सोलहवें वर्ष से आरम्भ यौवनावस्था व उसके पश्चात विवाह करना, सन्तान उत्पन्न करना, उनका लालन व पालन तथा उन्हें अच्छे गुरूकुल, विद्यालय में भेजकर सुशिक्षित व संस्कारित करना उनका मुख्य कर्तव्य हैं। इसके साथ स्त्री ने जो अध्ययन किया है उसके अनुसार गृहस्थ जीवन में रहते हुए उसका समाज व देश के लिए जो उपयोग हो सकता है, वह करना चाहिये। शिक्षित स्त्रियों के लिए शिक्षण व अध्यापन का कार्य महत्त्वपूर्ण है। आजकल की परिस्थितियों में वह किसी गुरूकुल या विद्यालय में अपने अध्येय विषयों को पढ़ा सकतीं हैं। हम समझते हैं कि सारे देश व विश्व में संस्कृत का महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट आर्ष प्रणाली से अध्यापन आवश्यक होना चाहिये। इसका महत्व यह है सभी लोग ईश्वर की भाषा को जानकर ईश्वर के सन्देश को, जो वेदों में विहित व निहित है, जान सकेगें। वेद ईश्वर-रचित हैं व सूर्य के समान स्वत: प्रमाण ग्रन्थ हैं। वेद ऐसे ग्रन्थ हैं जो सृष्टि के आरम्भ में भी प्रासंगिक थे, आज भी हैं और भविष्य में भी रहेगें। वेदों का अध्ययन करके ही हम इस संसार के उत्पत्तिकर्ता और स्वयं की जीवात्मा का सत्य व यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। मानव जीवन के कर्तव्य जिनके करने से जीवन के उद्देश्य, भोग व अपवर्ग, की प्राप्ति में सहायता मिलती हैं, वह जान कर उनका आचरण, पालन व उनकी साधना कर सकेगें। संसार के अन्य ग्रन्थों से यह कार्य व जीवन के उद्देश्य का पूरा होना सम्भव नहीं है। आजकल यह कार्य सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों ने सरल कर दिया है परन्तु यह ग्रन्थ तो दीपक के समान हैं, असली सूर्य तो वेद ही हैं। दीपक की आवश्यकता प्राय: रात्रि व अन्धकार के समय में ही पड़ती है, दिन में जब सूर्य प्रकाशित हो रहा हो तो दीपक की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। अत: वेदों का अध्ययन प्रासंगिक, अनिवार्य व अपरिहार्य है। सभी स्त्रियों व पुरूषों के लिए वेदाध्ययन अति आवश्यक है अन्यथा जीवन व्यर्थ होगा। देश-विदेश की सभी नारियां जब वेद ज्ञान से सम्पन्न होगीं तभी वह अन्धविश्वास, पाखण्ड, अज्ञानता, कुरीतियों से बच सकेगी, नहीं तो आजकल जैसा हम देश-विदेश में देख रहे हैं कि सर्वत्र मूर्तिपूजा, पाखण्ड, फलित ज्योतिष, अवतारवाद की मिथ्या मान्यता व नाना प्रकार के अन्धविश्वास, धर्म व मजहबों में मिथ्या दया, प्रलोभन व हिंसा आदि से लोग ग्रसित हैं, वह जारी रहेगा और सबका जीवन व्यर्थ हो जायेगा। इस गलती के कारण सभी मनुष्यों को परजन्मों में कितने दु:खों व नरक को भोगना पड़ेगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। हां, वेदों की शिक्षा के साथ ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों का अध्ययन, अध्यापन, उनसे जुड़ी लाभप्रद सेवा आदि कार्यों को करने की कोई मनाही नहीं है, परन्तु हम समझते हैं कि स्त्रियों को वेद निर्दिष्ट मर्यादापूर्ण जीवन को ही अपनाना चाहिये। पश्चिम की दिखावे, प्रदर्शन, नाना प्रकार के वस्त्रों व वेशभूषा को धारण कर प्रदर्शन की प्रवृत्ति जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में घातक व हानिकारक है, इससे बचना होगा। आजकल अंग्रेजी बोलना एक फैशन हो गया है। यह हमारी बौद्धिक विकृति व विदेशी पाश्चात्य कुसंस्कारों का परिणाम है। हां, आवश्यक होने पर विदेशियों व हिन्दी आदि न जानने वालों से अंग्रेजी में संवाद करना बुरा नहीं है परन्तु केवल हमें अंग्रेजी आती है इसलिये हिन्दी भाषियों व घर व परिवार में अंग्रेजी में संवाद करना व व्यवहार करना तुच्छ मानसिकता प्रतीत होती है, जिससे विवेकी महिलाओं को बचना चाहिये। विदेशी-पाश्चात्य देशों की अच्छी बातों को ग्रहण करना अच्छी बात है पर अन्धानुकरण करना आत्महत्या, आत्महनन व आत्म गौरव के विरुद्ध है। **(शेष पृष्ठ 6 पर)**

सम्पादकीय......

महर्षि दयानन्द और उनकी राष्ट्रीय विचारधारा

उन्नीसवीं सदी के इतिहास में दयानन्द को एक समाज सुधारक के रूप में जाना जाता है। मगर उन्होंने भारतीय लोगों में राष्ट्रीय विचारधारा का जो शंख फूंका था उसका इतिहास में कहीं वर्णन नहीं मिलता। उनके समाज सुधार के कार्य भी उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत थे। भारतीयों में राष्ट्रीय विचारधारा जगाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उन्होंने भारतीयों में स्वदेशी तथा स्वदेशाभिमान की भावनाओं को पुनः जागृत किया। वास्तव में वह एक समाज सुधारक होने से पूर्व राष्ट्र के सच्चे उद्धारक थे।

दयानन्द की राष्ट्रीय विचारधारा का उत्कट प्रमाण है उनकी जन्मभूमि के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा। जन्मभूमि को स्वतन्त्र देखने का स्वप्न सबसे पहले उन्होंने ही संजोया था। वे कहते थे कि–कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। स्वाधीनता शब्द का सर्वप्रथम उपयोग उन्होंने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया है। सत्यार्थ प्रकाश उनकी राष्ट्रीय विचारधारा से परिपूर्ण है। इसमें उन्होंने सत्य के अर्थों पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रवाद की भावना का भी चित्रण किया है। उन्होंने एक राजा की परिभाषा देते हुए कहा है कि–राजा उसी को कहते हैं जो पवित्र गुण, कर्म स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपात रहित, न्याय धर्म की सेवा, प्रजा में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मानकर उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने का सदा यत्न करे। ठीक इसी प्रकार उन्होंने प्रजा की परिभाषा देते हुए कहा–प्रजा उसको कहते हैं जो पवित्र, गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्याय धर्म के सेवन से राजा की उन्नति चाहती हुई राजद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते। जन्मभूमि के प्रति उनका अगाध प्रेम छठे समुल्लास में कई स्थानों पर प्रकट होता है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि– स्वराज्य, स्वदेश में उत्पन्न हुए वेदज्ञ, शास्त्र, शूरवीर, लक्ष्यवान, कुलीन तथा धर्मचतुर को ही मन्त्री बनाया जावे। राष्ट्रीय विचारधारा जागृत करने के लिए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि– हम और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना है, अब पालन होता है तथा आगे भी होता रहेगा, उसकी उन्नति तन–मन–धन से सब मिलकर करें।

महर्षि दयानन्द गुजरात में जन्में थे, मथुरा में गुरू विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त की तथा राष्ट्रीय जनता में राष्ट्रीयता जगाने के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी का सहारा लिया। यह उनकी स्वदेशीयत का ही प्रमाण था। उनका रहन–सहन, खान–पान, बोल–चाल, वेशभूषा आदि पूर्णरूपेण स्वदेशी था। वे उनमें से नहीं थे, जो खाते–पीते इस देश का थे और गुणगान यूरोप का गाते थे। दयानन्द के इस गुण को देखते हुए टी.एल. वास्वानी ने कहा था कि– दयानन्द की देशभक्ति का आधार उसका आर्य आदर्श के लिए प्रेम था। उनकी देशभक्ति उन लोगों के समान नहीं थी जो मुख पर भारत रखते हैं किन्तु भोजन, वस्त्र, भाषा तथा विचारों में यूरोपीय आदर्श बरतते हैं।

जब भारतीय स्वदेश भूल चुके थे, उनका स्वाभिमान खो चुका था, हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा को दीमक लग गई थी तथा हिन्दू संस्कृति तिल–तिल जल रही थी। उस समय दयानन्द ने लोगों को एक ईश्वर, एक धर्म, एक ध्वज तथा एक ही ग्रन्थ की प्रभुसत्ता में लाकर, आपसी भेदभाव मिटाकर भारत में राजनैतिकता एकता स्थापित करने का स्वप्न देखा था और इसमें काफी हद तक सफल रहे। भारतीयों को इस देश की गौरव गरिमा का परिचय देते हुए राष्ट्रीय विचारधारा के जनक ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि–यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है, जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही स्वर्ण अर्थात् धनी हो जाते हैं। वे देशवासियों को स्मरण दिलाते हुए आगे लिखते हैं कि– सृष्टि से लेकर पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम राज्य था।

महर्षि दयानन्द की विचारधारा, स्वदेश प्रेम तथा स्वदेशाभिमान को देखते हुए एक पाश्चात्य लेखक ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि– दयानन्द की शिक्षाओं की मुख्य प्रवृत्ति हिन्दुत्व का सुधार करने की उतनी नहीं है जितनी उसे उन विदेशी प्रभावों के विरुद्ध प्रतिशोध के लिए संगठित करने की है जो उनके विचार में उसका विराष्ट्रीयकरण कर रहे थे। महर्षि दयानन्द जब प्रचीन भारत का गौरव गान करते हैं तो उससे राष्ट्रीय विचारधारा का पोषण करने वाले तत्त्वों में उत्तेजना मिलती है और उस तरूण राष्ट्रीय विचारधारा का सुषुप्त राष्ट्रीय अहंकार जाग उठता है, तथा आकाक्षाएं प्रज्वलित हो उठती हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने देश को सभी प्रकार की कुरीतियों, अन्धविश्वासों, पाखण्डों, अनाचारों आदि से बचाने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द की इच्छा थी कि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो और इस राष्ट्र के निवासी अपने प्राचीन गौरव को लाने का प्रयास करें। महर्षि दयानन्द ने अपने विचारों की अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए आर्य समाज की स्थापना की। महर्षि दयानन्द जी विचारधारा से हमारे देशवासियों के मन में राष्ट्रीय अहंकार जाग उठा, उनकी आकाक्षाएं प्रज्वलित हो गई जिनके कानों में निरन्तर यह शोकपूर्ण मन्त्र फूंका गया था कि भारत का इतिहास सतत अपमान, अधोपतन, विदेशियों की पराधीनता तथा बाह्य शोषण की शोचनीय गाथा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय विचारधारा ने लोगों में स्वदेशीयत की प्रेरणा फूंकी, बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी पैदा किए। महर्षि दयानन्द जी वास्तव में इस देश के लिए जन्में थे, जिनका उद्देश्य केवल अपना भला नहीं अपितु संसार का उपकार करना था। महर्षि दयानन्द ने अपनी राष्ट्रीय विचारधारा से इस देश को जगाने का भरपूर प्रयास किया। महर्षि दयानन्द का जो लक्ष्य था, अपने गुरू को जो वचन दिया था उसी के अनुरूप उन्होंने सम्पूर्ण जीवन कार्य किया और अपने लक्ष्य को पूरा किया।

–प्रेम भारद्वाज संपादक एवं सभा महामन्त्री

वैवाहिक विज्ञापन

वैश्य 5 फीट 6 इंच, 34 वर्षीय दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. संस्कृत, बी.एड.,नेट, जे.आर.एफ.उत्तीर्ण, पी.एच.डी. शोधरत, डी.ए.वी. कॉलेज मोतिहारी बिहार में अध्यापक, वार्षिक आय 4 लाख, स्वयं का चार पहिया वाहन, गेहुंआ रंग, धार्मिक आर्य विद्वान् हेतु सुशिक्षित कन्या चाहिए। दहेज जाति बन्धन नहीं। सम्पर्क–09471947138, 09135221010

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/– रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/– रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

–व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

अनार्ष धूर्तचेष्टितम् (अनार्ष से आर्ष की ओर)

-ले० डा. रविदत्त शर्मा एम.ए. (वेद) आर्य समाज शामली

परमेश्वर की कामनारूपी चीज से सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत वेद में मिलता है। गीता के अनुसार सर्वप्रथम सात ऋषि और चार मनु प्रजापति के सङ्कल्प से प्रकट हुए और उनसे सृष्टि का क्रम चला। बृहदारण्यक के अनुसार सकल ब्रह्माण्ड एक अन्डाकार था और उससे विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई। सारांश यह है कि सृष्टि की दिव्य उत्पत्ति स्वीकार की गयी है। इतना स्पष्ट है कि हम ऋषियों की सन्तान हैं। मनुष्य को संसार में रहने के लिये दिव्य ज्ञान भी दिया गया, जिसे वेद कहा जाता है। ज्ञान का नाम वेद है। ज्ञान के तीन स्त्रोत हैं; ज्ञान-कर्म-उपासना। आदि ऋषियों के द्वारा वेदज्ञान सृष्टि को मिला। वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने में कोई सङ्कोच नहीं होना चाहिये। मनुष्य के लिये सर्वथा निष्पक्ष एवं निर्भ्रान्त मार्ग वेद में ही सुझाया गया है।

महाभारत के युद्ध में सर्वस्व स्वाहा हो गया। उसके उपरान्त कोई ऐसी विभूति उत्पन्न नहीं हुई जो खोया हुआ धन (ज्ञान) वापस लाकर समाज को नवीन चेतना प्रदान कर सके। यहीं से मानव जाति के पतन का इतिहास आरम्भ होता है। तब से यही सिलसिला जारी है। भारी भीड़ में यदि कोई गिर जाये तो सभी उस पर पैर रखते हुए चले जाते हैं। ठीक ऐसा ही वेद के साथ हुआ, सभी उसे कुचलते रहे किसी ने उद्धार नहीं करना चाहा। आज का मनुष्य इतना उच्छृङ्खल हो गया है कि स्वयं ही भगवान बन बैठा तथा भोली-भाली जनता को घोर अन्धकार में धकेल दिया। स्थिति ऐसी शोचनीय हो गयी कि कोई भी उपाय सफल नहीं हो रहा है। स्वामी दयानन्द के द्वारा वेदोद्धार आन्दोलन चलाया गया जो आज भी अग्रसर है।

भगवानों की इस बाढ़ को रोकने का कोई उपाय वर्तमान में नहीं सूझ रहा है। अशिक्षित, दुर्व्यसनी, पतित एवं भ्रष्ट लोग समाज के संचालक बने हुए हैं। वे पहले यह जान लेते हैं कि जनता की भावना किस ओर आकर्षित हो सकती हैं ? फिर वैसा ही रूप धारण कर भक्ति और मुक्ति के ठेकेदार बन जाते हैं। उनका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उनके भक्तों को कोई भी सीधी राह पर नहीं ला सकता। तुलसीकृत रामचरित मानस में लिखा है कि हनुमान जी जब लंका में गये तो विभीषण राम-राम रट रहा था। यह मूर्खतापूर्ण योजना है कि जहाँ श्री राम को कोई जानता भी नहीं वहाँ उसे उपास्यदेव अर्थात् परमेश्वर का स्थान दिया जाय। इसे तुलसी की गप ही कहा जा सकता है। एक ओर हनुमान चालीसा का ढोंग खड़ा कर दिया ; जिसमें सारे काम सिद्ध हो जाते हैं। १९६२ ई० में भारत-चीन युद्ध हुआ, जिसमें भारत की बुरी तरह पराजय हुई, तब ये हनुमान चालीसा वाले कहाँ सो रहे थे ? आजकल जहाँ तहाँ आतङ्कवाद का भय छाया हुआ है तो हनुमान चालीसा वाले क्यों न नियुक्त कर दिये जाएं ?

पुराणों में बहुत से भगवानों का वर्णन है। मनुष्य को पथभ्रष्ट करने के लिये पुराण सबसे अधिक उत्तरदायी हैं। जितनी भी कुरीतियाँ आर्यों में प्रविष्ट हुई हैं, सब पुराणों की कृपा है। रूक्मिणी राधा और सत्यभामा का सम्बन्ध श्रीकृष्ण जी के साथ स्पष्ट तौर से माना गया है। फिर सोलह हजार पत्नियाँ एक ही बार ले आते हैं। इसके अतिरिक्त स्नान करती हुई स्त्रियों को नग्न शरीर दिखाने के लिये विवश करते हैं। श्रीकृष्ण को कामवासना से इतना क्यों जोड़ दिया गया कुछ समझ में नहीं आता। एक पुराण की दूसरे पुराण में निन्दा की गयी है। पुराणों का भी एक युग रह चुका है और उस युग में मनुष्य का जीवन संयम रहित था। स्थान-स्थान पर 'ब्रह्मोवाच' का प्रयोग हुआ है। ब्रह्मा जी भी इतनी घटिया किस्म की कथा कहते हैं तो फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही अलग है। एक सन्तोषी का ऐसा भ्रामक प्रचार चल रहा है कि स्त्रियाँ तो पूर्णतः विवेकहीन हो जाती हैं। छोटी अवस्था में बच्चियों को उसकी पूजा सिखायी जाती है ; परिणाम यह होता है कि वे जीवन भर मूर्ख ही बनी रहती हैं। कहीं बाल योगेश्वर अपनी शिष्या को प्रेम जाल में फँसा कर भगवान बनने का नाटक करता है तो कहीं पथभ्रष्ट रजनीश यौनशिक्षा देकर योग का प्रचार कर रहा है। भगवान लगातार पैदा होते जा रहे हैं और मरते जा रहे हैं। फिर भी लोगों की आँखे नहीं खुल रही हैं। मरने के बाद भी रजनीश के अनुयायी उसे भगवान ही मान रहे हैं। वेद-शास्त्रों के ज्ञान से रहित सीधे ही भगवान बनने का दावा करने वाले जनता को क्या उपदेश दे सकते हैं ?

अब प्रश्न यह है कि समाज को इन धूर्तों से कैसे बचाया जाय ? कुछ लोगों की मान्यता है कि अपनी-अपनी भावना के अनुसार कोई किसी को भी माने ; इस विषय में छूट होनी चाहिये। परन्तु इतना कहने से काम नहीं चलेगा। भावना के आधार पर तो बलि आदि बहुत से कुकृत्य पनप रहे हैं। मुख्य विषय मानवसुधार का है कि इन व्यापक विकृतियों से समाज को कैसे बचाया जाय ? मनुष्य जब तक ईश्वर और धर्म का वास्तविक रूप नहीं जानेगा तब तक परिवर्तन की कोई सम्भावना नहीं। वास्तव में ये भावनाप्रधान भक्त ईश्वर और धर्म के विषय में कुछ भी नहीं जानते। धर्म और ईश्वर में से धर्म को पहले जानना जरूरी है। धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है ? उसका पालन किस प्रकार किया जाय ? उससे लाभ क्या होगा ? ये बातें जब तक व्यक्ति नहीं जानेगा, वह धर्म का आचरण ही नहीं कर पायेगा। आज देश की जो दुर्दशा हो रही है उसका एकमात्र कारण यही है। यहाँ की अधिकांश जनता धर्म से अनभिज्ञ है। इसका एक कारण धर्म-निरपेक्ष शासन की स्थापना भी है। मनुजी ने धर्म के (धृति-क्षमा-दम-अस्तेय-शौच-इन्द्रियनिग्रह-धी-विद्या-सत्य-अक्रोध) दस लक्षण बताये हैं क्या इनको सब स्वीकार करते हैं ? पातञ्जलयोगदर्शन के अनुसार यम-नियम का पालन सब करते हैं ? क्या वेद की सत्ता तथा वैदिक सिद्धान्तों में सब का दृढ़ विश्वास है ? क्या मानव जीवन का उद्देश्य सब जानते हैं? जब तक सामान्य जीवन धर्म से नहीं जुड़ेगा तब तक सुधार नहीं हो सकता।

जहाँ पण्डित जी ही वेद का विरोध करते हों वहाँ वेद की बात करना अप्रासंगिक सा लगता है। ये लोग समझते हैं कि वेद प्रचार से उनकी जीविका का हनन होगा। इसी कारण आर्षग्रन्थ न तो स्वयं पढ़ते हैं और न अपने अनुयायियों को ही पढ़ने देते हैं। स्त्रियों को तो इतना भयभीत करते हैं कि वेदमन्त्र का पाठ करने से स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं। किसी से धूर्तता से धन ठगकर भगवान की कृपा का बहाना बना देते हैं। मनोकामना पूरी करने के लिये रूद्राभिषेक, सत्यनारायण कथा, सन्तोषी का व्रत, हनुमान चालीसा का पाठ, कीर्तन तथा जगराता आदि बहुत से उपाय खोज निकाले हैं। ऐसी स्थिति में पुरुषार्थ और कर्त्तव्य का क्या अस्तित्व रह जायेगा ? गंगा का स्मरण करने से ही सारे पाप धुल जायेंगे तो सन्ध्या-हवन-दान आदि करने की क्या महत्ता रह जायेगी ? जो व्यक्ति कर्मफल व्यवस्था में विश्वास नहीं रखता उसे शुभ-अशुभ कर्म में क्या अन्तर दिखायी देगा ? ऋषियों की बातों को मनवाने के लिये पाखण्ड को फैलाने वाले धर्म-गुरुओं पर काबू पा लेना आवश्यक है। उनके अनुयायी उनके अनुसार ही कार्य करेंगे। यह तभी सम्भव है जबकि प्रचार योजनाबद्ध हो, कुछ लक्ष्य बनाकर कार्य किया जाय। दूसरे सम्प्रदायों के लोग सुनिश्चित कार्यक्रम बनाकर प्रचार करते हैं। अनार्ष एवं विषैली भक्ति से यथाशीघ्र निरीह जनता को बचाया जाय अन्यथा एक दिन ऐसा ही आयेगा कि वेद-शास्त्रों का आर्षज्ञान का नाम शेष रह जायेगा। यदि अन्धकार बढ़ रहा है तो प्रकाश करने वाले की कमी है। हम सब मिलकर व्रत लेवें कि वेदज्ञान की ज्योति को अधिक से अधिक फैलावें और अन्धेरे दिलों में प्रकाश की किरण जगावें।

क्या मृत-देह को जलाना उपयुक्त है

-ले० महात्मा चैतन्यमुनि जी, सुन्दर नगर (हिमाचल प्रदेश)

मरने के बाद व्यक्ति की मृत-देह का क्या किया जाए अर्थात् उसका संस्कार किस प्रकार से करें यह प्रश्न विचारणीय है। मृत-देह के साथ भिन्न-भिन्न देशों एवं जातियों में भिन्न-भिन्न व्यवहार होता है। जलाना, दफनाना, पशुओं के आगे डाल देना, वायु में या औषधादि डालकर शुष्क कर देना, पानी में डाल देना आदि अनेक पद्धतियां प्रचलित है। पारसियों में मुर्दे को न गाड़ा जाता है और न ही जलाया जाता है। वे मुर्दा शरीर को एक बुर्ज़ पर खुला, नंगा रख देते हैं। बुर्ज़ पर रखने का अर्थ है-ज़मीन पर, मिट्टी पर, ईंटों पर, पत्थरों पर-कहीं भी ऐसे स्थान पर जहां अन्तरिक्ष के पक्षी उसे खाकर खत्म कर दें। मुम्बई में एक बुर्ज़ बना हुआ है जिसे "Tower of Silence" कहते हैं। मुर्दे को लाकर ऊपर के तख्तों पर उसे नंगा रख दिया जाता है। ले जाने वालों को 'नासासालार' कहते हैं। वहां लाश को खाने के लिए गिद्ध मंडराया करते हैं। लाश के वहां रखते ही वे गिद्ध एक-दो घण्टों में ही उसका भक्षण कर देते हैं। ये लोग मुर्दे को न तो प्राचीन इजिप्शियन्स में सुरक्षित रखते हैं, न उसे जमीन में गाड़ते हैं।

अनेक जातियों में यह भी धारणा रही है कि जब व्यक्ति का शरीर से सम्बन्ध छूट जाता है, तब भी उसका शरीर के साथ किसी अदृश्य तौर पर सम्बन्ध बना रहता है। मृत-व्यक्ति से भय तथा उसके प्रति प्रेम-ये दोनों भावनाएं मनुष्य को नहीं छोड़ती। यही कारण है कि ये जातियां किसी न किसी प्रकार मृत-देह को किसी न किसी प्रकार सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती हैं। अनेक जातियों में मृत-देह को भूमिसात् करते हुए उसके बर्तन, उसके खाने का सामान, उसका फ़र्नीचरादि सब उसके साथ रख देने की प्रथा है। कई जातियों में बच्चे के मरने पर स्त्रियां अपने स्तनों से दूध निकालकर उसके मुंह में भर देती हैं ताकि बच्चा उस दूध का सेवन कर सके। बलेगिया में वहां का पुरोहित कब्र बनाता हुआ उसमें एक छेद रख देता था ताकि उस में से मृत-व्यक्ति को पानी तथा भोजन पहुंचता रहे। कई जातियों में जब उनका मुखिया या राजा मरता था तब उसकी कब्र इतनी बड़ी बनाई जाती थी ताकि उसके गुलाम तथा स्त्रियाँ भी उसमें मारकर वहां रखी जा सकें। कभी-कभी मारकर और कभी मुखिया की जीवित पत्नियों को मृत-व्यक्ति के साथ गाड़ दिया जाता था ताकि वे उसके काम आ सकें। इन प्रथाओं का उदाहरण ईजिप्ट के मम्मी हैं। प्राचीन ईजिप्शियनों की सबसे बड़ी चिन्ता इस बात की होती थी कि अपने मृत राजा का शरीर किस प्रकार औषधियों के अनुभावित करें ताकि मृत-व्यक्ति की आत्मा का परलोक से इस लोक के अपने शरीर के साथ आना-जाना बना रहे। यही कारण था कि वे शरीर को जलाते नहीं थे, कब्र में सुरक्षित रखते थे। ईजिप्ट में इन राजाओं की जिन्हें फैरोहा कहा जाता था बड़ी-बड़ी कब्रें बनी हुई हैं जिन्हें पिरैमिड कहा जाता है। इन पिरैमिडों में प्राचीन राजाओं के शरीर औषधियों के अनुभावित हुए पड़े हैं, साथ ही उनकी स्त्रियों, उनके नौकर-चाकर, उनके फ़र्नीचर आदि सामान भी उनके मृत-देह के साथ सुरक्षित हैं। ये पिरैमिड संसार के महान् आश्चर्यों में गिने जाते हैं।

यहूदियों, ईसाईयों तथा मुसलमानों में शव को भूमि में गाड़ने की प्रथा प्रचलित है। ईसा-मसीह भी यहूदी थे इसलिए उन्हें भी एक पहाड़ी में गाड़ा गया था। ईसाईयों का मानना है कि वे तीसरे दिन कब्र से निकल गए थे और परमात्मा के पास चले गए थे। इसी की स्मृति में ईसाईयों ने मुर्दों को गाड़ना जारी रखा। उनका यह भी विश्वास है कि जो ईसा मसीह में विश्वास ले आते हैं, उनके लिए कब्र एक विश्वास तथा आराम की जगह है और जब तक कब्रें खुलेंगी नहीं तब तक वे उनमें सुख की नींद सोते रहेंगे। इसके बाद जब सृष्टि के अन्त का दिन आएेगा, तब सब कब्रें खुलेंगी, सब उठ खड़े होंगे और सब देखेंगे कि परमात्मा के दाएं हाथ मसीह बैठे हैं और ईसा में विश्वास लाने वालों तथा अविश्वसासियों के भाग्य का निपटारा हो रहा है। इस समय को वे "Resurrection" का दिन कहते हैं। हज़रत मसीह में विश्वास लाने वाले स्वर्ग में तथा अविश्वासी नरक में सदा के लिए भेज दिए जाऐंगे। आत्मा को उस दिन उसके कर्मों का फल मिल सके इसलिए ईसाई लोग मृत-व्यक्ति के शरीर को कब्र में संभाल कर रखते हैं। इसी प्रकार इस्लाम मत के लोग भी मुर्दे को गाड़ते हैं ताकि सृष्टि का जब अन्त अर्थात् कयामत का दिन आऐगा, तब 'सुर' नाम की एक तुरही बजेगी, सब कब्रें खुल जाऐंगी और जन्नत या दोज़ख का फैसला होगा। प्रश्न उठता है कि जो लोग कयामत के दिन भी जीवित होंगे तथा कब्रों में दफन नहीं होंगे उनका क्या होगा? वे लोग इसका उत्तर देते हैं कि कयामत के दिन तुरही बजते ही जिन्दा लोग भी तुरन्त मर जाऐंगे। प्रश्न यह भी उठा कि इतने दिन कब्र में रहने पर शव मिट्टी हो जाऐगा तो वह कैसे उठ सकेगा। इस प्रश्न का हल डा० सेल अपने द्वारा किए गए कुरान के अनुवाद में बताते हैं कि हज़रत मुहम्मद ने इस समस्या का हल यह निकाला था कि शरीर तो मिट्टी हो जाऐगा मगर एक हड्डी बची रहेगी जिसका नाम 'अल अज्ब' है जिसे अन्तिम रीढ़ की हड्डी कहा जाता है। कयामत के दिन से चालीस दिन तक वर्षा होती रहेगी जिससे जैसे वर्षा से बीज से पौधे उठ खड़े होते हैं वैसे 'अल अज्ब' से सब मुर्दे उठ खड़े होंगे। इस्लाम के अनुसार मुर्दे को किब्ला अर्थात् मक्का शरीफ़ की तरफ मुंह रख के दफ़नाया जाता है। कब्र इतनी ही गहरी बनाई जाती है ताकि समय पड़ने पर मुर्दा आसानी से उठकर बैठ सके। कब्र में 'मुनकिर' और 'नकीर' नाम के दो फरिश्ते मुर्दे के दाएं-बाएं बैठकर उससे उसके अच्छे-बुरे कर्मों की पड़ताल करेंगे जिसके अनुसार उसे जन्नत या दोज़ख भेजा जाएगा।

कुछ जातियां मृत-देह को गंगा आदि पवित्र मानी जाने वाली नदियों में बहा देती हैं। उनका यह मानना है कि इससे व्यक्ति की सद्गति हो जाती है। हिन्दुओं में कई लोग संन्यासियों का अग्नि-दाह करने के स्थान पर उनका जल-प्रवाह करते हैं या उन्हें भूमि में गाड़ देते हैं। संन्यासी को आह्वनीयादि अग्नियों से रहित बताया गया है संभवत: इसी भ्रान्ति में पड़कर संन्यासियों का अग्नि-दाह न करने की प्रथा कुछ सम्प्रदायों में चल पड़ी हैं। भूमि में गाड़ने के पीछे यह भावना रहती है कि उनकी चिरस्मृति बनी रहे इसीलिए जहां सन्यासी की मृत-देह को गाड़ा जाता है वहां उसकी समाधि आदि बनाने की परम्परा है......

हिन्दुओं तथा कुछ अन्य मतों में मृत-देह को जलाने की प्रथा है। वे ईसाई और मुसलमानों के समान इसलिए शव को सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं समझते हैं क्योंकि व्यक्ति के कर्म-फल की व्यवस्था करने के लिए किसी पैगम्बर, पीर, फरिश्ते आदि की जरूरत नहीं है, यह कार्य सर्वसमर्थ, स्वयंभू, न्यायकारी परमात्मा स्वयं करता है तथा इसके लिए शरीर को देखने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से होता है और आत्मा के साथ रहने वाले सूक्ष्म-शरीर पर स्वत: जो कर्म-संस्कार विद्यमान् हैं उसी के आधार पर व्यक्ति को फल मिल जाता है। उनके अनुसार यदि किसी पीर-पैगम्बर आदि को यह कार्य सौंप दिया जाए तो सर्वज्ञ न होने कारण उससे भूल-चूकादि हो सकती है मगर परमात्मा सर्वज्ञ एवं न्यायकारी होने के कारण पूर्णतया ठीक-ठीक निर्णय करने में स्वयं समर्थ है उसे अपने कार्य करने के लिए किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं। ये लोग मृत-देह को जलाना इसलिए सर्वोत्तम समझते हैं क्योंकि इससे एक स्थान पर ही अनेक शवों का दाह-संस्कार किया जा सकता है जिससे भूमि की बचत होती है। इससे मृत-देह में जो रोग आदि के किटाणु होते हैं वे अग्नि में जलने से समाप्त हो जाते हैं तथा वायु प्रदूषण से मुक्ति मिलती है। संस्कृत में मृत्यु के लिए 'पंचत्वं गत:' यह शब्द है। शरीर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच भूतों का बना है, इसलिए मरने के बाद इन पांचों भूतों को जल्दी से जल्दी सूक्ष्म करके अपने मूलरूप में पंहुचा देना ही वैदिक-पद्धति है और शव को अग्नि में जलाने से यह क्रिया अतिशीघ्र तथा समुचित रूप से हो जाती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार-'सबसे बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है क्योंकि उसको जल-जन्तु उसी समय चीर-फाड़ कर खा जाते हैं, परन्तु जो-कुछ हाड़ व मल जल में रहेगा वह सड़कर जगत् को दु:खदायक होगा। उससे कुछ-एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है क्योंकि यद्यपि उसको मासांहारी पशु-पक्षी नोंच खाऐंगे तथापि जो उसके हाड की मज्जा और मल सड़कर दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा, और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जाऐंगे।' काका कालेलकर ने भी दाह-संस्कार को ही अच्छा माना है। ईसाई डाक्टर भारत-रत्न कुमारप्पा ने परिवार वालों को कहा था कि उसे दफनाया न जाए बल्कि अग्नि संस्कार किया जाए। अब बहुत से ईसाई भी ऐसा करने लगे हैं। जब श्री धर्मानन्द कोसाम्बी ने अपने शरीर के बारे में गान्धीजी से परामर्श किया कहा कि अग्निदाह में खर्च अधिक होता है तो गान्धी ने जालाने के पक्ष में तर्क देते हुए कहा-'अगर वैज्ञानिक ढंग से दफ़न किया जाए तो उसका खर्चा अधिक होता है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष- क्या मृत्त देह.....

रामकृष्ण परमहंस, दण्डी स्वामी विरजानन्द, महर्षि दयानन्द आदि अन्य अनेक महापुरूषों ने संन्यासी होते हुए भी अग्नि-संस्कार को ही पसन्द किया।'

जब यूरोप में रोम का आधिपत्य था जो उस समय रोमन राज्य में उच्च-वर्ग के लोग मुर्दों को जलाते थे। उन्होंने मुर्दों को जलाने की रीत ग्रीस लोगों से ली थी और ग्रीस पर किसी समय भारत की विचारधारा का प्रभाव था मगर जब ईसाईयत का प्रचार हुआ तथा सृष्टि की समाप्ति के दिन हर व्यक्ति के सशरीर उठ खड़े होने के विचार ने जन्म लिया, तब चर्च ने मृतक को जलाने का विरोध किया। विरोध का कारण यह था कि यदि शव को जला दिया गया तो आखिरी दिन जब हर व्यक्ति के पुण्य-पाप का लेखा-जोखा होकर स्वर्ग-नरक का बंटवारा होगा, तब शरीर के भस्म हो जाने पर किसे स्वर्ग मिल सकेगा, किसे नरक मिल सकेगा। ईसाईयत के इस प्रचार के कारण पाश्चात्य-जगत् में तो अग्निदाह पर रोक लग गई मगर पूर्वी देशों में शव-दाह बदस्तूर चलता रहा। भारत, वर्मा और जापान में मुर्दे को जलाया ही जाता रहा। इंग्लैण्ड में 13 जनवरी 1874 को 'इंग्लैण्ड की शव-दाह संस्था' गठित हुई जिसने शव के जलाने को ही उपयुक्त माना है। सर थौम्पसन के विचारों के साथ उस समय के वैज्ञानिकों, लेखकों, कलाविदों ने सहमति प्रकट की और एक घोषणा पत्र में कहा गया-'इस संस्था के अभिभावक मुर्दे गाड़ने की प्रचलित रीति का अनुमोदन नहीं करते और चाहते हैं कि इसकी जगह कोई ऐसी विधि अपनाई जाए जिससे शरीर शीघ्र से शीघ्र अपने घटक तत्वों में विलीन हो जाए, और इस रीति से न तो जीवित व्यक्ति तिरस्कृत हों और साथ ही मृत-शरीर भी सर्वथा दोषरहित हो जाए।' संस्था ने यह घोषणा तो कर दी मगर चर्च के विरोध के कारण ऐसा संभव न हो सका। उनका प्रयत्न जारी रहा और चार साल बाद उन्हें वोकिंग स्थान में जगह मिली जहां इग्लैण्ड में पहला 'दाह-श्मशान' बना तथा 1883 में जब डाक्टर विलियम प्राईस ने अपने मृत बच्चे का दाह-कर्म करना चाहा तो उस पर मुकद्दमा चला और अन्ततः अदालत ने यह फैसला दिया कि शव का दाह-कर्म अवैधानिक नहीं है।

इंग्लैण्ड में 1992 में पहले-पहल 'शव-दाह विधेयक' पास हुआ मगर शव-दाह के लिए बहुत कम लोग तैयार हुए। द्वितीय विश्व-युद्ध में मरने वालों की संख्या इतनी अधिक हो गई कि शव दफनाने के लिए भूमि की कमी को देखते हुए उन्हें जलाने का निर्णय लिया गया तथा बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से शव-गृहों में जलाए जाने वाले मृतकों की संख्या तीन लाख प्रतिवर्ष बढ़ने लगी अर्थात् इग्लैण्ड में जितने व्यक्ति मरते थे उन में से आधे जलाए जाने लगे। इस बीच शव-गृहों भी संख्या भी एक सौ नब्बे तक पंहुच गई और यूरोप के अन्य देशों में भी शव-दाह का अनुकरण होने लगा। स्कैन्डेनेवियन देशों, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड आदि में भी तीस प्रतिशत मुर्दे जलाए जाने लगे है। अमेरिका में शव-दाह का सूत्रपात 1876 में हुआ। वहां की शव-दाह संस्था के आंकड़ों के अनुसार बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिका में 230 'शव-दाह-गृह' बन चुके थे और 1970 में एक वर्ष में अठासी हजार मृतकों का दाह-संस्कार हुआ था। यूरोप तथा अमेरिका में 1937 से प्रत्येक देश में अपनी-अपनी 'राष्ट्रीय शव-दाह संस्थाएं' बन गई और वे आपस में विचार-विनियम कर सकें इस आशय से एक 'अन्तर्राष्ट्रीय शव-दाह संगठन' की भी स्थापना हो गई जिसका मुख्य कार्यालय लन्दन में है। यदि तुलनात्मक ढंग से देखा जाए तो शव का जलाना ही उपयुक्त है क्योंकि मृत-शरीर को जलाने में भूमि कम खर्च होती है, कब्रों के कारण लाखों बीघा भूमि रूकी पड़ी है और भविष्य में यह संकट और भी अधिक विकट हो सकता है। कब्रों के कारण बहुत से रोग वायु-मण्डल को दूषित कर देते हैं-मुर्दों को जलाने से यह सब नहीं होता है। कब्रिस्तान के पास से जो जल प्रवाहित होता है, दूषित होने के कारण उससे भी अनेक रोग होते हैं। कुछ पशु मृत-शरीर को कब्रों से उखाड़कर खा जाते हैं और रोगी-शरीर को खाने से वे रोगी बनकर मनुष्यों में भी रोग फैलाते है। कुछ कफ़न-चोर कब्र खोदकर कफ़न उतार लेते हैं जिससे सम्बन्धियों के मनोभावों को ठेस पंहुचती है। मुर्दों को जला देने से दरगाहों, कब्रों, पीरों आदि के समाधि-स्थान बनाने में व्यय होने वाले करोड़ों रूपयों की वचत हो सकती है। मुर्दों की पूजादि करने के पाखण्ड से निजात मिल सकती है, इन पर चढ़ने वाला लाखों रूपए के चढ़ावे को किसी अन्य परोपकारी कार्य में व्यय किया जा सकता है। अनेक पतित लोग मुर्दों को उखाड़कर उनके साथ कुकर्म करते पकड़े गए हैं, मुर्दो को जला देने से ऐसा नहीं हो सकेगा। ऐसे कुछ स्थानों पर चरस, गांजा, अफीम और शराबादि पी जाती है जिससे भ्रष्टाचार फैलता है, मुर्दों को जला देने से यह सब भी रूक सकता है.....

पृष्ठ 2 का शेष- भारतीय नारी.....

स्त्री व पुरूषों को वस्त्र ऐसे पहनने चाहिये जिससे वस्त्र धारण करने का उद्देश्य पूरा हो। शरीर ढका हुआ हो। वेशभूषा ऐसी हो जिससे व्यक्तित्व, शालीन व मर्यादित दिखाई दे, बेढंगा न दिखे। वेशभूषा ऐसी हो जिससे काम करने में सुविधा हो व जिससे सभ्यता का दिग्दर्शन हो। समझदारों को संकेत करना ही उपयुक्त होता है। हम न तो प्राचीनता की हर बात के समर्थक है और न विदेशी व पाश्चात्य देशों की हर बात के समर्थक व विरोधी। हमारा विचार व मान्यता वह है कि जिससे जीवन का उत्थान हो, हमारा जीवन गरिमा व सादगी से पूर्ण तथा दूसरों की दृष्टि में आदरणीय व अनुकरणीय बने, वैसा हम करें एवं बनें। हम तो इस बात में विश्वास रखते हैं कि आज वह समय आ गया है एवं विश्व के एक ही सत्य-मत व सत्य-धर्म, एक जैसे विचार, ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति पर एक समान विचार व मान्यतायें हों, जिससे समाज व देश-विदेश के हर स्तर पर असमानता की भावना पूरी तरह से समाप्त हो जाये। यदि वेदानुसार ईश्वरोपासना, यज्ञ अग्निहोत्र करना व माता-पिता-आचार्यों व बुजुर्गों का सम्मान व सेवा करना अच्छा व सत्य सिद्ध हो तो उसको अपनाना चाहिये अन्यथा फिर सत्य की खोज कर जो सभी मनुष्यों के लिए लाभप्रद व जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक हो, उसको ही सबको करना चाहिये। हम सारे विश्व के लोगों का आवाहन करना चाहते हैं कि वह वेद और महर्षि दयानन्द की सभी मान्यताओं, सिद्धान्तों व विचारों का अध्ययन व परीक्षा करें और जो उन्हें असत्य प्रतीत हों उसको आर्य जगत के विद्वानों को अवगत करायें जिससे असत्य मान्यताओं व परम्पराओं, आर्य समाज या अन्य मत-मतान्तरों की, का प्रचलन बन्द हो सके और केवल सत्य मान्यताओं का ही प्रचलन समाज व देश विदेश में हो। हमारे जीवन का एक उद्देश्य सत्य को जानना व उसको मानना व अपनाना ही है। सत्य केवल एक और केवल एक ही है। सत्य से विमुख व्यक्ति को मनुष्य कहना सम्भवतः मनुष्य शब्द का अप-प्रयोग है।

आजकल देश भर में महिलाओं के प्रति अपराध, उत्पीड़न व बलात्कार जैसी घटनाओं में वृद्धि के समाचार मिल रहे हैं। एक समय था जब हमारे देश के एक राजा अश्वपति ने यह घोषणा की थी कि मेरे राज्य में कोई मद्यपान नहीं करता, कोई जुआ नहीं खेलता, कोई व्यभिचारी नहीं है तो व्यभिचारिणी होने का तो प्रश्न ही नहीं है। उस राजा ने संध्योपासना व अग्निहोत्र करने की राजाज्ञा जारी करके सन्ध्या व यज्ञ न करने को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया था। आज हम प्राचीन अच्छे वैदिक मूल्यों को छोड़कर पश्चिमी मूल्यों व वहां की भोग प्रधान कुसंस्कृति के अभ्यस्त हो रहे हैं जिसका परिणाम आज नारी के प्रति नाना प्रकार के अपराध हो रहे है। यदि हम अपराध मुक्त समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो हमें लगता है कि इसका एक ही उपाय है और वह ईश्वर, वेद व ऋषियों द्वारा प्रवर्तित धर्म, संस्कृति व सभ्यता को अपनाना होगा। उसमें देश काल व परिस्थिति के अनुसार न्यूनाधिक परिवर्तन किया जा सकता है परन्तु उसकी आत्मा को सुरक्षित करते हुए ही ऐसा करना उचित होगा। यही काम महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने समय सन् 1824-1883 में किया था। नारियों के प्रति अपराध व अन्य अपराधों का एक कारण संस्कार विहीन शिक्षा, अशिक्षा, कुसंस्कार, अज्ञानता, बेरोजगारी, समाज में आर्थिक व सामाजिक असमानता व असन्तुलन, सामाजिक, आर्थिक व नैतिक भ्रष्टाचार, पाखण्ड, अन्ध-विश्वास व कुरीतियां, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष व अवतारवाद की मिथ्या मान्यतायें आदि अनेक कारण हैं जिनके कारण समाज में विकृतियां व असन्तुलन उत्पन्न होता है व हुआ है। इसके लिए सरकार व पुलिस विभाग को प्रभावशाली, न्यायपूर्ण व निष्पक्ष आचरण का परिचय देना होगा व अन्याय दूर करने का दृढ़ संकल्प लेना होगा, तभी कुछ हो सकता है। इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु समाज से संस्कारयुक्त शिक्षा द्वारा अज्ञानता मिटाकर व सामाजिक असन्तुलन दूर करने के उपायों को प्राथमिकता देने का हर सम्भव प्रयास, कठोर नियम बनाकर भी, करना चाहिये। अपराध रोकने में कठोर व त्वरित दण्ड भी सहायक होता है, इसका क्रियान्वयन आवश्यक है।

वेदों का एक मन्त्र है 'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहिंत यदायुः।।' इस मन्त्र में कहा गया है कि दिव्य गुण युक्त सृष्टि यज्ञ के विधाता प्रभो ! हम आपकी कृपा से कानों से उत्तम शब्द ही सुनें, आंखों से अच्छा ही देखें, स्थिर व सुदृढ़ अंगों और शरीरों से आपकी ही स्तुति करते हुए आपके द्वारा हमारे कर्मानुसार नियत आयु को पूर्ण रूप से प्राप्त होवें तथा अकाल मृत्यु के ग्रास न बने। इस वैदिक शिक्षा को हमें देश के प्रत्येक बालक व बालिका को हृदयगंम कराना है। जब हम कानों व आंखों से बुरा न सुनेंगे और देखेंगे और इसके स्थान पर हितकारी वचन सुनेगें और माता-पिता-आचार्यों के दर्शन कर उनकी सेवा-सुश्रुषा करेगें तभी अपराध समाप्त होने की आशा है और समाज का सुधार होगा।

संगच्छध्वं

-ले० नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' 602 जी एच 53 सैक्टर 20 पंचकूला

किसी भी राष्ट्र की आयु के संदर्भ में मात्र 67 वर्ष की अवस्था को बाल्यावस्था ही कहा जा सकता है लेकिन बाल्यावस्था में ही किसी का इतनी भयावह बीमारियों से ग्रस्त हो जाना निश्चित रूप से चिंता उत्पन्न करता है। आज देश में व्याप्त बीमारियों क्षेत्रवाद, भाषावाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद, संसाधनों के बंटवारे पर झगड़े, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक संसाधनों की लूट, प्रकृति का अत्याधिक दोहन, आतंकवाद, नक्सलवाद, बेरोजगारी जैसी समस्याएँ राष्ट्र की इतनी छोटी आयु में दीमक की भांति लग गई हैं और राष्ट्र को अंदर ही अंदर खोखला कर रही हैं। ऐसी स्थिति में समाज राष्ट्र के प्रति लगाव रखने वाले सभी राष्ट्रवादियों जागरूक नागरिकों का परम दायित्व बन जाता है कि इन बीमारियों का इलाज करें अन्यथा इन व्याधियों से ग्रस्त हमारा राष्ट्र इस तथाकथित झूठी विकास की अवधारणा पर चलता हुआ विनाश को प्राप्त हो जायेगा। हमें इन बीमारियों के मुख्य कारण विकास की सम्मोहित करती झूठी अवधारणा के सम्मोहन को समझ कर तोड़ना होगा। आज इस विकास के नाम पर पाश्चात्य अंधानुकरण करते हुए आध्यात्मिक शिखर से बड़ी तेजी के साथ गहरी खाईयों की ओर फिसलते लुढ़कते जा रहे हैं। इस पाश्चात्य अंधानुकरण की झूठी चकाचौंध में हमें अपनी दशा और दिशा दिखाई नहीं दे रही जैसे किसी वाहन की तीव्र रोशनी में हमें बाकी कुछ भी दिखाई नहीं देता। हम शिखर से खाईयों की ओर इतनी तेजी से फिसल रहे हैं कि इस गति के रोमांच को हम विकास की गति समझ रहे हैं। स्पीड थ्रिल्स बट किल्स जिन खाईयों की तरफ हम तेजी से फिसल रहे हैं उन खाईयों में पहले से ही कई संस्कृतियों मिस्र, रोम, यूनान आदि के कंकाल अट्टाहस करते हुए आह्वान कर रहे हैं आओ तुम भी इन खाईयों में समा जाओ।

देश में व्याप्त व्याधियों के मूल कारण विकास की झूठी अवधारणा की दशा दिशा को समझ कर इसे ठीक करना होगा वर्ना आने वाली पीढ़ियां हमसे यह यक्ष प्रश्न पूछेगी कि संक्रमण के उस दौर में क्या आपने अपनी भूमिका का निर्वहन किया और उस समय हमारे पास जुए में हारे पांडवों की भांति चुपचाप सिर झुकाकर बैठे रहने के अलावा कोई अन्य उपाय नहीं होगा। यह भी कोई निश्चित नहीं कि इतनी गंभीर व्याधियों से ग्रस्त राष्ट्र की इस दुर्दशा के बाद हम स्वयं भी बच पायेंगे।

वर्तमान परिस्थिति में राष्ट्र के समक्ष सुरसा की भांति मुंह बाए खड़ी इन समस्याओं के निदान के लिए देश अंधे विकास के नाम पर चल रही पाश्चात्य अंधानुकरण भोगवाद की दशा और दिशा को समझकर इसे परिवर्तित करना होगा। इसके लिए हमें वैदिक आर्य विचारधारा में उपायों की खोज करनी पड़ेगी। ऋग्वेद के अंतिम मंडल तथा अथर्ववेद एवं तैतिरीय ब्राह्मण में संगठन सूक्त के नाम से सुप्रसिद्ध मंत्र के एक छोटे से अंश को समझने से भी कल्याण संभव है-**संगच्छध्वं**-मिल कर चलो, **संवदध्वं**-संवाद अर्थात आपस में प्रेमपूर्वक बातें करो **सं वो मनांसि जानताम्**-तुम्हारे मन मिलकर सत्य असत्य निर्णय के लिए सदा विचार किया करें।

देश में व्याप्त समस्याओं को समझकर उनके समाधान के लिए वेद भगवान ने इस संगठन सूक्त से आदेश दिया 'मिलकर चलो' अब प्रश्न उठता है कि मिलकर कैसे चले क्या आकाश में उड़ रही गिद्धों एवं चीलों की भांति किसी मरे हुए जानवर का भक्षण करने के लिए एक स्थान पर इकट्ठे हो जाने को ही 'मिल कर चलना' कहेंगे। शायद नहीं क्योंकि बुद्धिहीन प्राणियों द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मिलना या झुंड बनाना 'समज' कहलाता है। मनुष्य तो एक सामाजिक प्राणी है और उसके लिए मिलकर चलने के लिए बुद्धिपूर्वक सोचविचार कर बनाई गई योजना से बना संगठन या समाज आवश्यक है। मननशील या विचारवान होना मनुष्य होने का प्रथम आवश्यक गुण है। अतः 'संगच्छध्वं' मिल कर चलने के लिए प्रथम आवश्यकता है कि मनुष्य विचार करते हुए योजना बनाकर श्रेष्ठ लोगों के समान अर्थात् आर्य समाज का गठन करके मिल कर चलें।

अब दूसरा प्रश्न उठता है कि 'मिल कर चलना' किधर है इसके लिए हमें अपने अर्थात् मनुष्य के जीवन के उद्देश्य को समझना होगा। क्या मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ईश्वर द्वारा हमारे उपयोग के लिए प्रदत्त साधन अर्थात् शरीर के सुख के साधन एकत्रित करना है। यदि हम केवल ऐसा ही समझते हैं तो शायद हमारी स्थिति 'साधन आधीन' हो जाने वाला है जो कि पराधीन से भी बदतर है और जीवन यात्रा में दुर्घटना को अवश्यंभावी बना देती है। यह ठीक है कि साधक द्वारा साधना के लिए साधन का ठीक होना साध्य अर्थात् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। हम इस साध्य अर्थात् उद्देश्य प्राप्ति के लिए साधन एकत्रित करने के लिए क्या करें। तो इस प्रश्न का उत्तर यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम मंत्र में मिलता है 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' अर्थात् समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले परमपिता परमेश्वर द्वारा प्रदत्त प्रकृति के साधनों का त्यागपूर्वक भोग वा उपयोग करें।

लेकिन इन साधनों को पाकर भी चलने की दिशा का प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है इसके लिए हमें अपने लक्ष्य वा उद्देश्य को समझना होगा केवल मनुष्य जीवन ही ऐसा है जो कि भोग के साथ-साथ कर्म योनि भी है और मनुष्य के जीवन का वास्तविक उद्देश्य साधक द्वारा साधन का उपयोग करते हुए साध्य की प्राप्ति है इसी को उपासना भी कहा जाता है इस में जब साधक और साध्य एकरूप होकर मनुष्य का आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर परम आनंद की अवस्था में आ जाता है इस मोक्ष प्राप्ति को ही मनुष्य को श्रेय मार्ग अथवा धर्म मार्ग पर चलना होता है। धर्म प्र यज्ञः अर्थात् धर्म पर चलने के इस योग मार्ग पर मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होते हुए संसार के समस्त श्रेष्ठ पुरूषों के साथ संसार के वैचारिक दृष्टि से महानतम संगठन आर्यसमाज के साथ पुरातन सनातन वैदिक आर्य विचारधारा के मार्ग पर चलना चाहिए तभी हम कह पायेंगे 'संगच्छध्वं' और भोग मार्ग को छोड़कर योग मार्ग पर चलकर निस्वार्थ भाव से परोपकार कार्य त्यागपूर्वक साधनों का उपयोग करते हुए अपने मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कर पायेंगे और कह पायेंगे 'संगच्छध्वं'।

महर्षि दयानन्द मठ ढन्न मोहल्ला का वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न

महर्षि दयानन्द मठ वेद मन्दिर ढन्न मोहल्ला जालन्धर का वेद प्रचार सप्ताह 14 जुलाई से 20 जुलाई तक धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर प्रातः चतुर्वेद शतक के मन्त्रों से यज्ञ किया गया जिसके ब्रह्मा आर्य जगत के उच्च कोटि के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य श्री वेद प्रकाश जी श्रोत्रिय थे। वेद पाठ श्री सुरेश कुमार शास्त्री, श्री सन्दीप शास्त्री तथा गुरूकुल करतारपुर के ब्रह्मचारियों ने किया। सोमवार से शनिवार तक रात्रिकालीन सत्संग में मधुर भजनोपदेशक श्री राजेश अमर प्रेमी के भजन तथा आचार्य जी के प्रवचन होते रहे। कार्यक्रम का समापन 20 जुलाई को यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ हुआ। श्री रोहित अग्रवाल, श्री भरत मित्तल, श्री प्रवीण गुप्ता, श्री मदन लाल, श्री मनोज कपूर, श्री हिन्दपाल सेठी, श्री राजेश परमार आदि ने सपरिवार यजमान बनकर यज्ञ को सम्पन्न करके आचार्य के करकमलों से आशीर्वाद प्राप्त किया। यज्ञ के पश्चात सभी ने प्रातःराश ग्रहण किया। जलपान करने के बाद 10 बजे मुख्य कार्यक्रम आरम्भ हुआ। श्री राजेश प्रेमी जी ने ईश्वर तथा महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित भजन सुनाकर सभी को आनन्दित किया। इसके पश्चात श्रीमति रश्मि घई जी ने अपने मधुर कण्ठ से भजन सुनाकर आई हुई संगत को झूमने पर मजबूर कर दिया। श्रीमति मालती अग्रवाल जी ने अपनी लिखी हुई मनुष्य जीवन से सम्बन्धित कविता सुनाई। भजनों के पश्चात कार्यक्रम के मुख्य वक्ता आचार्य श्री वेद प्रकाश जी श्रोत्रिय का प्रवचन हुआ। श्री श्रोत्रिय जी ने महर्षि दयानन्द तथा ईश्वर से सम्बन्धित विषयों पर विचार करते हुए सभी को भावुक कर दिया। अंत में मठ के महामन्त्री श्री रवि मित्तल जी ने आए हुए सभी गणमान्य अतिथियों, धर्मप्रेमी सज्जनों तथा कार्यक्रम में सहयोग देने वाले कार्यकर्ताओं तथा अधिकारियों का हार्दिक धन्यवाद किया। इस अवसर पर सर्वश्री प्रकाश चन्द सुनेजा,सत्यशरण गुप्ता, सोहन लाल सेठ, विनोद सेठ, कैलाश अग्रवाल, अरूण कोहली, राम भुवन शुक्ला, राजेन्द्र विज, ध्रुव मित्तल, सुदेश मित्तल, मालती अग्रवाल, अरविन्द घई, अजय महाजन आदि महानुभाव उपस्थित थे।

-कुन्दन लाल अग्रवाल प्रधान दयानन्द मठ

वेदवाणी

असुर संहारक इन्द्र

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः।।

-ऋक्० १०/२२/१५

विनय-*हे इन्द्र ! तुम सब मनुष्यों का भला करने वाले हो, सब विश्व का कल्याण करने वाले हो। जब कभी कोई महा-असुर विश्वव्यापी होकर विश्वभर को पीड़ित कर देता है तो तुम्हीं उसका संहार करके विश्व का पालन करते हो। यह मायावी 'शुष्ण असुर' हमारे रुधिर का, धन-जन भोजन-जीवन-प्राण आदि रुधिर का, इस प्रकार शोषण करता है कि हमें इसका कुछ भी पता नहीं लगता। असली शोषण-कर्म करने वाला और इस चूसने में बड़ा भाग बँटाने वाले इसके बड़े-बड़े साथी असुर भी अपने-आपको अन्त तक छिपाये रखते हैं। रुधिर आदि की बहुत कमी हो जाने पर जब हम जानना चाहते हैं कि ये हमारा शोषण करने वाले कौन हैं, तब भी ये विदित नहीं होते, 'वेद्य' ही रहते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु ये 'वेद्य' असुर अपने इस राक्षसी शोषण के नृशंस कृत्य को छिपाने के लिए अपनी आसुरी 'शचियों' द्वारा, शक्तियों व कर्मों द्वारा एक बहुत बड़ा आवरण खड़ा कर लेते हैं। एक नयी पृथिवी, एक नई सृष्टि ही रचकर हमारी आँखों में धूल डालते रहते हैं। हम आँखों से इनकी इस कौशल-पूर्ण पार्थिव रचना को देखते हुए 'वाह-वाह' करते जाते हैं और अपने-आपको चुसवाते जाते हैं, परन्तु हे इन्द्र ! छिपे हुए इन शोषक असुरों का यह पार्थिव विस्तार चाहे कितना बड़ा हो, चाहे कितना आडम्बरपूर्ण हो, किन्तु न इसके हाथ होते हैं और न पैर। यह माया-ही-माया होता है। तुमसे अनुप्राणित न होने के कारण न तो इसमें कोई असली कर्मशक्ति होती है और न इसका कोई आधार होता है, अतः इस 'अहस्ता अपदी' मायामयी पृथिवी को तुम पर्याप्त सीमा तक बढ़ने भी देते हो। शुष्णासुर अपने इस विश्वव्यापी शोषण की आड़ करने के लिए इसे इतना बढ़ाता जाता है कि इस आवरण को विश्वभर में फैला देता है और इस विश्वव्यापी आवरण द्वारा अपने-आपको सब जगह परिवेष्टित कर लेता है, सब ओर से लपेट लेता है, पूरी तरह छिपा लेता है और एक विश्वव्यापी माया-दुर्ग में अपने को सुरक्षित कर लेता है, पर इसके इतना बढ़ जाने पर भी हे इन्द्र ! तुम इस 'शुष्ण' के सब पार्थिव विस्तार को एक बार में छिन्न-भिन्न कर देते हो, शुष्णासुर के सब ठाठ को गिरा देते हो, सम्पूर्ण माया को पूरी तरह मिटा देते हो। यह सब हे इन्द्र ! तुम सब मनुष्यों के हित के लिए, विश्वकल्याण के लिए करते हो और यह तुम्हारा ही काम है। यह सब तुम्हीं कर सकते हो, केवल तुम्हीं कर सकते हो।*

साभार-वैदिक विनय, प्रस्तुति-रणजीत आर्य

योग ध्यान, साधना शिविर

आनन्दधाम (गढ़ी आश्रम) ऊधमपुर जम्मू में पूज्य महात्मा चैतन्यमुनि जी के सान्निध्य में दिनांक 14 से 21 सितम्बर 2014 तक निशुल्क योग-ध्यान-साधना शिविर का आयोजन किया गया है जिसमें अनुभवी आचार्यों एवं महात्माओं द्वारा उपासना, प्राणाधाम, योगासन आदि कराएं जाएंगे तथा दर्शन पठन-पाठन की भी व्यवस्था है। साधक अपनी शंकाओं का समाधान भी कर सकेंगे। इस अवसर पर शिविरों में शिविरार्थियों के बहुत अच्छे अनुभव रहे हैं इसलिये साधकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। अतः इच्छुक साधक अपना स्थान आरक्षित करने के लिये मोबाइल फोन नम्बर 094191-07788, 094197-96949 अथवा 094191-98451 पर तुरन्त सम्पर्क करें।

-भारत भूषण आनन्द आश्रम प्रधान

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

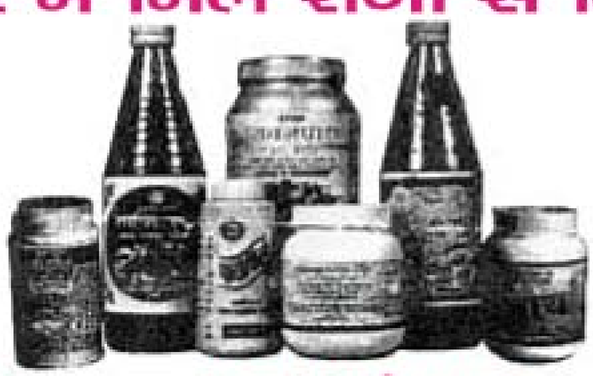

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताजगी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, जिला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।